# समाजको बदलो

'बदलना' प्रेरक क्रिया है, जिसका अर्थ है—बदल डालना। प्रेरक क्रियामें अप्रेरक क्रियाका भाव भी समा जाता है; इसलिए उसमें स्वयं बदलना और दूसरेको बदलना ये दोनों अर्थ आ जाते हैं। यह केवल व्याकरण या शब्दशास्त्रकी युक्ति ही नहीं है, इसमें जीवनका एक जीवित सत्य भी निहित है। इसीसे ऐसा अर्थविस्तार उपयुक्त मालूम होता है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अनुभव होता है कि जो काम औरोंसे कराना हो और ठीक तरहसे कराना हो, व्यक्ति उसे पहले स्वयं करे। दूसरोंको सिखानेका इच्छुक स्वयं इच्छित विषयका शिक्षण लेकर—उसमें पारंगत या कुशल होकर ही दूसरोंको सिखा सकता है। जिस विषयका ज्ञान ही नहीं, अच्छा और उत्तम शिक्षक भी वह विषय दूसरेको नहीं सिखा सकता। जो स्वयं मैला-कुचैला हो, अंग-अंगमें मैल भरे हो, वह दूसरोंको नहलाने जायगा, तो उनको स्वच्छ करनेके बदले उनपर अपना मैल ही लगायगा। यदि दूसरेको स्वच्छ करना है तो पहले स्वयं स्वच्छ होना चाहिए। यद्यपि कभी कभी सही शिक्षण पाया हुआ व्यक्ति भी दूसरेको निश्चयके मुताबिक नहीं सिखा पाता, तो भी सिखानेकी या शुद्ध करनेकी क्रिया बिलकुल बेकार नहीं जाती, क्योंकि इस क्रियाका जो आचरण करता है, वह स्वयं तो लाभमें रहता ही है, पर उस लाभके बीज जल्द या देरसे, दिखाई दें या न दें, आसपासके वातावरणमें भी अंकुरित हो जाते हैं।

स्वयं तैयार हुए बिना दूसरेको तैयार नहीं किया जा सकता, यह सिद्धान्त सत्य तो है ही, इसमें और भी कई रहस्य छिपे हुए हैं, जिन्हें समझनेकी जरूरत है। हमारे सामने समाजको बदल डालनेका प्रश्न है। जब कोई व्यक्ति समाजको बदलना चाहता है और समाजके सामने शुद्ध मनसे कहता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बदल जाओ,' तब उसे समाजको यह तो बताना ही होगा कि तुम कैसे हो, और कैसा होना चाहिए। इस समय तुम्हारे अमुक अमुक संस्कार हैं, अमुक अमुक व्यवहार है, उन्हें छोड़कर अमुक अमुक संस्कार और अमुक अमुक रीतियाँ धारण करो। यहाँ देखना यह है कि समझानेवाला व्यक्ति जो कुछ कहना चाहता है, उसमें उसकी कितनी लगन है, उसके बारेमें कितना जानता है, उसे उस वस्तुका कितना रंग लगा है, प्रतिकूल संयोगोंमें भी वह उस सम्बन्धमें कहाँ तक टिका रहा है और उसकी समझ कितनी गहरी है। इन बातोंकी छाप समाजपर पहले पड़ती है। सारे नहीं तो थोड़ेसे भी लोग जब समझते हैं कि कहनेवाला व्यक्ति सच्ची ही बात कहता है और उसका परिणाम उसपर दीखता भी है, तब उनकी वृत्ति बदलती है और उनके मनमें सुधारकके प्रति अनादरकी जगह आदर प्रकट होता है। भले ही वे लोग सुधारकके कहे अनुसार चल न सकें, तो भी उसके कथनके प्रति आदर तो रखने ही लगते हैं।

•

औरोंसे कहनेके पहले स्वयं बदल जानेमें एक लाभ यह भी है कि दूसरोंको सुधारने यानी समाजको बदल डालनेके तरीकेकी अनेक चाबियाँ मिल जाती हैं। उसे अपने आपको बदलनेमें जो कठिनाइयाँ महसूस होती हैं, उनका निवारण करनेमें जो ऊहापोह होता है, और जो मार्ग ढूँढ़े जाते हैं, उनसे वह औरोंकी कठिनाइयाँ भी सहज ही समझ लेता है। उनके निवारणके नए नए मार्ग भी उसे यथाप्रसंग सूझने लगते हैं। इसलिए समाजको बदलनेकी बात कहनेवाले सुधारकको पहले स्वयं दृष्टांत बनना चाहिए कि जीवन बदलना जो कुछ है, वह यह है। कहनेकी अपेक्षा देखनेका असर कुछ और होता है और गहरा भी होता है। इस वस्तुको हम सभीने गाँधीजीके जीवनमें देखा है। न देखा होता तो शायद बुद्ध और महावीरके जीवन-परिवर्तनके मार्गके विषयमें भी सन्देह बना रहता।

इस जगह मैं दो-तीन ऐसे व्यक्तियोंका परिचय दूँगा जो समाजको बदल डालनेका बीड़ा लेकर ही चले हैं। समाजको कैसे बदला जाय इसकी प्रतीति वे अपने उदाहरणसे ही करा रहे हैं। गुजरातके मूक कार्यकर्ता **रविशंकर महाराजको**—जो शुरूसे ही गाँधीजीके साथी और सेवक रहे हैं,—चोरी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खून करनेमें ही भरोसा रखनेवाली और उसीमें पुरुषार्थ समझनेवाली 'बारैया' जातिको सुधारनेकी लगन लगी। उन्होंने अपना जीवन इस जातिके बीच ऐसा ओतप्रोत कर लिया और अपनी जीवन-पद्धतिको इस प्रकार परिवर्तित किया कि धीरे-धीरे यह जाति आप ही आप बदलने लगी, खूनके गुनाह खुद-ब-खुद कबूल करने लगी और अपने अपराधके लिए सजा भोगनेमें भी गौरव मानने लगी। आखिरकर यह सारी जाति परिवर्तित हो गई।

रविशंकर महाराजने हाई स्कूल तक भी शिक्षा नहीं पाई, तो भी उनकी वाणी बड़े बड़े प्रोफेसरों तकपर असर करती है। विद्यार्थी उनके पीछे पागल बन जाते हैं। जब वे बोलते हैं तब सुननेवाला समझता है कि महाराज जो कुछ कहते हैं, वह सत्य और अनुभवसिद्ध है। केन्द्र या प्रान्तके मन्त्रियों तक पर उनका जादू जैसा प्रभाव है। वे जिस क्षेत्रमें कामका बीड़ा उठाते हैं, उसमें बसनेवाले उनके रहन-सहनसे मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं—क्यों कि उन्होंने पहले अपने आपको तैयार किया है—बदला है, और बदलनेके रास्तोंका—भेदोंका अनुभव किया है। इसीसे उनकी वाणीका असर पड़ता है। उनके विषयमें कवि और साहित्यकार स्व० मेघाणीने 'माणसाईना दीवा' (मानवताके दीपक) नामक परिचय-पुस्तक लिखी है। एक और दूसरी पुस्तक श्री बबलभाई मेहताकी लिखी हुई है।

दूसरे व्यक्ति हैं **सन्त बाल,** जो स्थानकवासी जैन साधु हैं। वे मुँहपर मुँहपत्ती, हाथमें रजोहरण आदिका साधु-वेष रखते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि बहुत ही आगे बढ़ी हुई है। वेष और पन्थके बाड़ोंको छोड़कर वे किसी अनोखी दुनियामें विहार करते हैं। इसीसे आज शिक्षित और अशिक्षित, सरकारी या गैरसरकारी, हिन्दू या मुसलमान स्त्री-पुरुष उनके वचन मान लेते हैं। विशेष रूपसे 'भालकी पट्टी' नामक प्रदेशमें समाज-सुधारका कार्य वे लगभग बारह वर्षोंसे कर रहे हैं। उस प्रदेशमें दो सौसे अधिक छोटे-मोटे गाँव हैं। वहाँ उन्होंने समाजको बदलनेके लिए जिस धर्म और नीतिकी नींवपर सेवाकी इमारत शुरू की है, वह ऐसी वस्तु है कि उसे देखनेवाले और जाननेवालेको आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। मन्त्री, कलेक्टर, कमिश्नर आदि सभी कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना-अपना काम लेकर सन्त बालके पास जाते हैं और उनकी सलाह लेते हैं। देखनेमें सन्त बालने किसी पंथ, वेष या बाह्य आचारका परिवर्त्तन नहीं किया परंतु मौलिक रूपमें उन्होंने ऐसी प्रवृत्ति शुरू की है कि वह उनकी आत्मामें अधिवास करनेवाले धर्म और नीति-तत्त्वका साक्षात्कार कराती है और उनके समाजको सुधारने या बदलनेके दृष्टिबिन्दुको स्पष्ट करती है। उनकी प्रवृत्तिमें जीवन-क्षेत्रको छूनेवाले समस्त विषय आ जाते हैं। समाजकी सारी काया ही कैसे बदली जाय और उसके जीवनमें स्वास्थ्यका, स्वावलम्बनका वसन्त किस प्रकार प्रकट हो, इसका पदार्थ-पाठ वे जैन साधुकी रीतिसे गाँव-गाँव घूमकर, सारे प्रश्नोंमें सीधा भाग लेकर लोगोंको दे रहे हैं। इनकी विचारधारा जाननेके लिए इनका 'विश्व-वात्सल्य' नामक पत्र उपयोगी है और विशेष जानकारी चाहनेवालोंको तो उनके सम्पर्कमें ही आना चाहिए।

तीसरे भाई मुसलमान है। उनका नाम है **अकबर भाई**। उन्होंने भी, अनेक वर्ष हुए, ऐसी ही तपस्या शुरू की है। बनास तटके सम्पूर्ण प्रदेशमें उनकी प्रवृत्ति विख्यात है। वहाँ चोरी और खून करनेवाली कोली तथा ठाकुरोंकी जातियाँ सैकड़ों वर्षोंसे प्रसिद्ध हैं। उनका रोजगार ही मानो यही हो गया है। अकबर भाई इन जातियों में नव-चेतना लाये हैं। उच्चवर्णके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी जो कि अस्पृश्यता मानते चले आये हैं और दलित वर्गको दबाते आये हैं, अकबर भाईको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। यह जानते हुए भी कि अकबर भाई मुसलमान हैं, कट्टर हिन्दू तक उनका आदर करते हैं। सब उन्हें 'नन्हें बापू' कहते हैं। अकबर भाईकी समाजको सुधारनेकी सूझ भी ऐसी अच्छी और तीव्र है कि वे जो कुछ कहते हैं या सूचना देते हैं, उसमें न्यायकी ही प्रतीति होती है। इस प्रदेशकी अशिक्षित और असंस्कारी जातियोंके हजारों लोग इशारा पाते ही उनके इर्द-गिर्द जमा हो जाते हैं और उनकी बात सुनते हैं। अकबर भाईने गाँधीजीके पास रहकर अपने आपको बदल डाला है—समझपूर्वक और विचारपूर्वक। गाँवोंमें और गाँवोंके प्रश्नोंमें उन्होंने अपने आपको रमा दिया है।

ऊपर जिन तीन व्यक्तियोंका उल्लेख किया गया है, वह केवल यह सूचित करनेके लिए कि यदि समाजको बदलना हो और निश्चित रूपसे नये सिरेसे गढ़ना हो, तो ऐसा मनोरथ रखनेवाले सुधारकोंको सबसे पहले आपको बदलना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। यह तो आत्म-सुधारकी बात हुई। अब यह भी देखना चाहिए कि युग कैसा आया है। हम जैसे हैं, वैसेके वैसे रहकर अथवा परिवर्तनके कुछ पैबन्द लगाकर नये युगमें नहीं जी सकते। इस युगमें जीनेके लिए इच्छा और समझपूर्वक नहीं तो आखिर धक्के खाकर भी हमें बदलना पड़ेगा।

समाज और सुधारक दोनोंकी दृष्टिके बीच केवल इतना ही अन्तर है कि रूढ़िगामी समाज नवयुगकी नवीन शक्तियोंके साथ घिसटता हुआ भी उचित परिवर्तन नहीं कर सकता, ज्योंका त्यों उन्हीं रूढ़ियोंसे चिपटा रहता है और समझता है कि आज तक काम चला है तो अब क्यों नहीं चलेगा? फिर अज्ञानसे या समझते हुए भी रूढ़िके बन्धनवश सुधार करते हुए लोक-निन्दासे डरता है, जब कि सच्चा सुधारक नये युगकी नयी ताकतको शीघ्र परख लेता है और तदनुसार परिवर्तन कर लेता है। वह न लोक-निन्दाका भय करता है, न निर्बलतासे झुकता है। वह समझता है कि जैसे ऋतुके बदलनेपर कपड़ोंमें फेरफार करना पड़ता है अथवा वय बढ़नेपर नये कपड़े सिलाने पड़ते हैं, वैसे ही नयी परिस्थितिमें सुखसे जीनेके लिए उचित परिवर्तन करना ही पड़ता है और वह परिवर्त्तन कुदरतका या और किसी वस्तुका धक्का खाकर करना पड़े, इससे अच्छा तो यही है कि सचेत होकर पहलेसे ही समझदारीके साथ कर लिया जाय।

यह सब जानते हैं कि नये युगने हमारे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पाँव जमा लिये हैं। जो पहले कन्या-शिक्षा नहीं चाहते थे, वे भी अब कन्याको थोड़ा बहुत पढ़ाते हैं। यदि थोड़ा बहुत पढ़ाना जरूरी है तो फिर कन्याकी शक्ति देखकर उसे ज्यादा पढ़ानेमें क्या नुकसान है? जैसे शिक्षणके क्षेत्रमें वैसे ही अन्य मामलोंमें भी नया युग आया है। गाँवों या पुराने ढंगके शहरोंमें तो पर्देसे निभा जाता है, पर अब बम्बई, कलकत्ता या दिल्ली जैसे नगरोंमें निवास करना हो और वहाँ बन्द घरोंमें स्त्रियोंको पर्देमें रखनेका आग्रह किया जाय, तो स्त्रियाँ खुद ही पुरुषोंके लिए भाररूप बन जाती हैं और सन्तति दिनपर दिन कायर और निर्बल होती जाती है।

विशेषकर तरुण जन विधवाके प्रति सहानुभूति रखते हैं, परन्तु जब विवाहका प्रश्न आता है तो लोक-निन्दासे डर जाते हैं। डरकर अनेक बार योग्य विधवाकी उपेक्षा करके किसी अयोग्य कन्याको स्वीकार कर लेते हैं और अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथसे ही अपना संसार बिगाड़ लेते हैं। स्वावलम्बी जीवनका आदर्श न होनेसे तेजस्वी युवक भी अभिभावकोंकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारके लोभसे, उनको राजी रखनेके लिए, रूढ़ियोंको स्वीकार कर लेते हैं और उनके चक्रको चालू रखनेमें अपना जीवन गँवा देते हैं। इस तरहकी दुर्बलता रखनेवाले युवक क्या कर सकते हैं? योग्य शक्ति प्राप्त करनेसे पूर्व ही जो कुटुम्ब-जीवनकी जिम्मेदारी ले लेते हैं, वे अपने साथ अपनी पत्नी और बच्चोंको भी खड्डेमें डाल देते हैं। महँगी और तंगीके इस जमानेमें इस प्रकारका जीवन अन्तमें समाजपर बढ़ता हुआ अनिष्ट भार ही है। पालन-पोषणकी, शिक्षा देनेकी और स्वावलंबी होकर चलनेकी शक्ति न होनेपर भी जब मूढ़ पुरुष या मूढ़ दम्पति सन्ततिसे घर भर लेते हैं, तब वे नई सन्ततिसे केवल पहलेकी सन्ततिका ही नाश नहीं करते बल्कि स्वयं भी ऐसे फँस जाते हैं कि या तो मरते हैं या जीते हुए भी मुर्दोंके समान जीवन बिताते हैं।

खान-पान और पहनावेके विषयमें भी अब पुराना युग बीत गया है। अनेक बीमारियों और अपचके कारणोंमें भोजनकी अवैज्ञानिक पद्धति भी एक है। पुराने जमानेमें जब लोग शारीरिक मेहनत बहुत करते थे, तब गाँवोंमें जो पच जाता था, वह आज शहरोंके 'बैठकिए' जीवनमें पचाया नहीं जा सकता। अन्न और दुष्पच मिठाइयोंका स्थान वनस्पतियोंको कुछ अधिक प्रमाणमें मिलना चाहिए। कपड़ेकी मँहगाई या तंगीकी हम शिकायत करते हैं परन्तु बचे हुए समयका उपयोग कातनेमें नहीं कर सकते और निठल्ले रहकर मिलमालिकों या सरकारको गालियाँ देते रहते हैं। कम कपड़ोंसे कैसे निभाव करना, सादे और मोटे कपड़ोंमें कैसे शोभित होना, यह हम थोड़ा भी समझ लें तो बहुत कुछ भार हलका हो जाय।

पुरुष पक्षमें यह कहा जा सकता है कि एक धोतीसे दो पाजामे तो बन ही सकते हैं और स्त्रियोंके लिए यह कहा जा सकता है कि बारीक और कीमती कपड़ोंका मोह घटाया जाय। साइकल, ट्राम, बस जैसे वाहनोंकी भाग-दौड़में, बरसात, तेज हवा या आँधीके समयमें और पुराने ढँगके रसोई-घरमें स्टोव आदि सुलगाते समय स्त्रियोंकी पुरानी प्रथाका पहनावा (लहँगे-साड़ोका) प्रतिकूल पड़ता है। इसको छोड़ कर नवयुगके अनुकूल पंजाबी स्त्रियों जैसा कोई पहनावा (कमसे कम जब बैठा न रहना हो) स्वीकार करना चाहिए।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक एवं राजकीय विषयोंमें भी दृष्टि और जीवनको बदले बिना नहीं चल सकता। प्रत्येक समाज अपने पंथका वेश और आचरण धारण करनेवाले हर साधुको यहाँ तक पूजता-पोषता है कि उससे एक बिल्कुल निकम्मा, दूसरोंपर निर्भर रहनेवाला और समाजको अनेक वहमोंमें डाल रखनेवाला विशाल वर्ग तैयार होता है। उसके भारसे समाज स्वयं कुचला जाता है और अपने कन्धेपर बैठनेवाले इस पंडित या गुरुवर्गको भी नीचे गिराता है।

धार्मिक संस्थामें किसी तरहका फेरफार नहीं हो सकता, इस झूठी धारणाके कारण उसमें लाभदायक सुधार भी नहीं हो सकते। पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तानसे जब हिन्दू भारतमें आये, तब वे अपने धर्मप्राण मन्दिरों और मूर्तियोंको इस तरह भूल गए मानो उनसे कोई सम्बन्ध ही न हो। उनका धर्म सुखी हालतका धर्म था। रूढ़िगामी श्रद्धालु समाज इतना भी विचार नहीं करता कि उसपर निर्भर रहनेवाले इतने विशाल गुरुवर्गका सारी जिन्दगी और सारे समयका उपयोगी कार्यक्रम क्या है?

इस देशमें असाम्प्रदायिक राज्यतंत्र स्थापित है। इस लोकतंत्रमें सभीको अपने मतद्वारा भाग लेनेका अधिकार मिला है। इस अधिकारका मूल्य कितना अधिक है, यह कितने लोग जानते हैं? स्त्रियोंको तो क्या, पुरुषोंको भी अपने हकका ठीक-ठीक भान नहीं होता; फिर लोकतंत्रकी कमियाँ और शासनकी त्रुटियाँ किस तरह दूर हों?

जो गिने-चुने पैसेवाले हैं अथवा जिनकी आय पर्याप्त है, वे मोटरके पीछे जितने पागल हैं, उसका एक अंश भी पशु-पालन या उसके पोषणके पीछे नहीं। सभी जानते हैं कि समाज-जीवनका मुख्य स्तंभ दुधारू पशुओंका पालन और संवर्धन है। फिर भी हरेक धनी अपनी पूँजी मकानमें, सोने-चाँदीमें, जवाहरातमें या कारखानेमें लगानेका प्रयत्न करता है परन्तु किसीको पशु-संवर्धन द्वारा समाजहितका काम नहीं सूझता। खेतीकी तो इस तरह उपेक्षा हो रही है मानो वह कोई कसाईका काम हो, यद्यपि उसके फलकी राह हरेक आदमी देखता है।

ऊपर निर्दिष्ट की हुई सामान्य बातोंके अतिरिक्त कई बातें ऐसी हैं जिन्हें सबसे पहले सुधारना चाहिए। उन विषयोंमें समाज जब तक बदले नहीं, पुरानी रूढ़ियाँ छोड़े नहीं, मानसिक संस्कार बदले नहीं, तब तक अन्य सुधार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो भी जायँगे तो भी सबल समाजकी रचना नहीं हो सकेगी। ऐसी कई महत्त्वकी बातें ये हैं :—

( १ ) हिन्दू धर्मकी पर्याय समझी जानेवाली ऊँच-नीचके भेदकी भावना, जिसके कारण उच्च कहानेवाले सवर्ण स्वयं भी गिरे हैं और दलित अधिक दलित बने हैं। इसीके कारण सारा हिन्दू-मानस मानवता-शून्य बन गया है।

( २ ) पूँजीवाद या सत्तावादको ईश्वरीय अनुग्रह या पूर्वोपार्जित पुण्यका फल मान कर उसे महत्त्व देनेकी भ्रान्ति, जिसके कारण मनुष्य उचित रूपमें और निश्चिन्ततासे पुरुषार्थ नहीं कर सकता।

( ३ ) लक्ष्मीको सर्वस्व मान लेनेकी दृष्टि, जिसके कारण मनुष्य अपने बुद्धि-बल या तेजकी बजाय खुशामद या गुलामीकी ओर अधिक झुकता है।

( ४ ) स्त्री-जीवनके योग्य मूल्यांकनमें भ्रांति जिसके कारण पुरुष और स्त्रियाँ स्वयं भी स्त्री-जीवनके पूर्ण विकासमें बाधा डालती हैं।

( ५ ) क्रियाकांड और स्थूल प्रथाओंमें धर्म मान बैठनेकी मूढता, जिसके कारण समाज संस्कारी और बलवान बननेके बदले उल्टा अधिक असंस्कारी और सच्चे धर्मसे दूर होता जाता है।

समाजको बदलनेकी इच्छा रखनेवालेको सुधारके विषयोंका तारतम्य समझकर जिस बारेमें सबसे अधिक जरूरत हो और जो सुधार मौलिक परिवर्तन ला सकें उन्हें जैसे भी बने सर्व प्रथम हाथमें लेना चाहिए और वह भी अपनी शक्तिके अनुसार। शक्तिसे परेकी चीजें एक साथ हाथमें लेनेसे संभव सुधार भी रुके रह जाते हैं।

समाजको यदि बदलना हो तो उस विषयका सारा नक्शा अपनी दृष्टिके सामने रखकर उसके पीछे ही लगे रहनेकी वृत्तिवाले उत्साही तरुण या तरुणियोंके लिए यह आवश्यक है कि वे प्रथम उस क्षेत्रमें ठोस काम करनेवाले अनुभवियोंके पास रहकर कुछ समय तक तालीम लें और अपनी दृष्टि स्पष्ट और स्थिर बनावें। इसके बिना प्रारंभमें प्रकट हुआ उत्साह बीचमें ही मर जाता है या कम हो जाता है और रूढिगामी लोगोंको उपहास करनेका मौका मिलता है।

[ तरुण, फरवरी १९४१ ]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org